प्रो० परमानन्द चोयल

राजस्थानी चित्रकला

कला मानव हृदय की मूर्तिमान अभिव्यक्ति है. बाह्य जगत् से बिम्बित कला सृष्टि को ही जो महत्व देते है, अन्तर्मुखी कला का रसास्वादन वे नहीं कर पाते. यही कारण है कि यथार्थ चश्मे से देखनेवाले लोग भारतीय कला का आनन्द नहीं ले सकते. जबसे डाक्टर, आनन्द कुमार स्वामी ने भारतीय कला के पक्ष में लेखनी उठाई, देश-विदेश के कला मर्मज्ञ भारतीय कला को आदर की दृष्टि से देखने लगे हैं. अजनता, एलोरा, पाल गुजराती, बाघ, साइगिरिया सित्रनवासल, तुर्किस्तान, बामिया, कश्मीरी, मुगल, राजस्थानी व पहाड़ी चित्रकला का अध्ययन आज विद्वानों के लिये रुचि का विषय हो गया है.

युगयुगीन भारतीय कला परम्परा में (इस २००० वर्ष की भारतीय कला में) राजस्थानी चित्रकला का अपना विशिष्ट स्थान है. १७ वीं शती के बौद्ध इतिहासकार तारानाथ ने लिखा है कि ७ वीं शती में राजस्थान, कला का मुख्य केन्द्र था. जहाँ से भारत में एक विशेष कला-धारा बही. श्रंगधर इसका प्रमुख चित्रकार था. खेद है कि इस वर्णन के अतिरिक्त उससे पूर्व की राजस्थानी चित्रकला के विषय में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है.

राजस्थान में चित्रों के तीन प्रकार दिखाई देते हैं. भित्ति-चित्र, इकहरे पृष्ठ पर बने पुस्तक चित्र व वसली पर अंकित छिन्न चित्र. भित्ति-चित्रण की प्रथा अजन्ता युग से चली आई है, परन्तु अजन्ता की भूमि तैयार करने की विधि एवं राजस्थानी विधान में काफी अन्तर है. शुद्ध फ्रेस्को प्रोसेज (भित्ति पर चित्र बनाने की विशेष विधि) राजस्थानी भित्ति-चित्रों में ही पाया जाता है. इस दृष्टिकोण से इटली के डेम्प प्रोसेज (गीली भूमि पर चित्र बनाने की प्रक्रिया) के समीप रक्खा जा सकता है. सबसे प्राचीन राजस्थानी भित्ति-चित्र जयपुर के समीप बैराट् नामक स्थान में पाये गये हैं. राष्ट्रीय ललित कला अकादमी के आग्रह से श्रीकृपालसिंह शेखावत ने कुछ वर्ष पूर्व इनकी कॉपी (अनुकृति) कर इस छिपे खजाने को संसार के सम्मुख लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया. इन चित्रों के विषय वीर रस से ओतप्रोत है—इनका वर्ण-विधान समतल व स्थूल रंग के इने गिने मंदभूत, रेखाएं घुमावदार एवं गतिपूर्ण हैं. १७ वीं शती से १९ वीं शती तक के राजस्थानी भित्ति-चित्रों से आज भी सैकड़ों प्राचीन इमारतें, हवेलियाँ व महल भरे पड़े हैं. कोटा की झाला की हवेली में बने राग-रंग व शिकार के चित्र कल्पना व रचना चातुर्य के अनुपम नमूने हैं. लोक कथाएँ, दरबारी ठाठ बाट, शिकार के दृश्य, एकांकी छवि घोड़े पर हुक्कामों के साथ, हुक्के की नली गुड़गुड़ाते जागीरदार, ठाकुर या राजा की औजपूर्ण आकृति, जनानखानों की रंगरेलियाँ, नायक नायिकाओं की प्रेम भरी लीलाएं, बारहमासा व रति रहस्य इत्यादि राजस्थानी भित्ति चित्रों के मुख्य विषय रहे हैं. चूनामिट्टी खिर जाने से ऐसी चित्रित दीवारे अब बढ़ती जा रही हैं इस तरह राजस्थानी चित्रकला का एक बड़ा अंश शनैः शनैः लुप्त होता जा रहा है.

सबसे पुराने पुस्तक-चित्र भोजपत्र व ताल पत्रों पर बने मिलते हैं. १२ वी शती में कागज निर्माण के बाद जैन सचित्र पुस्तकों की रचना आरम्भ हुई जिसका मुख्य केन्द्र गुजरात था. सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दृष्टि से गुजरात व दक्षिणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थान अधिक घुले-मिले हैं, अतएव इनकी चित्ररचना में शैली की एकता रही हो तो कोई आश्चर्य नहीं. मेवाड़ के १३वीं व १५वीं शती के दो जैन-ग्रंथ मिले हैं, हो सकता है और भी कहीं इस प्रकार के ग्रंथ रहे हों.

जैसलमेर[1] के जैन पुस्तक भण्डार का होना भी यह सिद्ध करता है कि शायद जैन हस्तलिखित पुस्तकें यहाँ पहले से ही मिलती रही होंगी. इन पुस्तकों की जिल्द लकड़ी की तख्तियों से बंधी है. इनमें प्रयुक्त शैली विशेष की परम्परा लगभग १६ वीं शती के अन्त तक चलती रही. इनके दृष्टिकोण, व संयोजन व विधान में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता है. बादलों के आलेखन, पेड़-पौधों की बनावट व एक आध अन्य उपकरण के चित्रण में हलका-सा परशियन प्रभाव (अलंकृत शैली का) झलक उठा है. यह प्रभाव इतना गौण है कि इसके निजत्व में कोई आघात नहीं पहुँचता. राबर्ट स्केल्टन ने १५वीं शती के नियामत नामा की खोज की है जिसकी एक प्रति इस समय लंदन की इंडिया आफिस लाइब्रेरी में है. शायद, 'मांडू' मांडवगढ़, (मालवा) के सुल्तान गयासुद्दीन खिजली के लिए यह पुस्तक बनाई गई हो. इसमें तथा बनारस कला भवन वाली शाहनामे की प्रति में परशियन कला का बहुत अधिक प्रभाव है. हो सकता है इनका अथवा ऐसी ही परशियन शैली से प्रेरित अन्य पुस्तकचित्रों का तथाकथित जैन, गुजराती अथवा राजस्थानी शैली पर क्षीण-सा प्रभाव पड़ा हो. १५६५ से १५८० शती तक मुगलशैली के सम्पन्न होने के बाद से ही राजस्थानी शैली में भी परिवर्तन होने लगा है. इसके पूर्व की राजस्थानी चित्र कला को शैली के दृष्टिकोण से जैन अथवा गुजराती चित्रकला से प्रथक् देखना उचित नहीं होगा. नाटकीय व अलंकृत संयोजनशैली की ग्रामीणता व ठेठपन, चटकीले रंगों का समतल प्रयोग व आलेखन की तत्परता इस कला के आकर्षक अंग हैं. सवाचश्म चेहरे, लम्बी नुकीली नाक, चेहरे की सीमांत रेखा को पार करती दूसरी आंख, छोटी आम की गुठली-सी ठुड्डी, फटे फटे कान तक खिंचे, लम्बे नैन, स्त्रियों का उभरा वक्ष, क्षीण कटि, चोली, लंहगा, दुपट्टा, पुरुषों के चकदार (तीन कानों वाले) जामें, अटपटी पगड़ियाँ, दुपट्टे व पटके इत्यादि के आलेखन ने इस शैली में एक अनोखापन ला दिया है. इसमें परम्परागत कला का अपभ्रंश रूप झलकने पर भी ग्रामीणता का आकर्षण व निर्दोषिता दिखाई देती है. गीत गोविंद, दुर्गासप्तशती, कथाकाव्य रतिरहस्य इत्यादि इनके विषय रहे हैं. राजस्थानी शैली का यह रूप धीरे-धीरे संवर्धित हो १६ वीं शती के अंत तक अपनत्व पाने लगा. १५६१ शती के उत्तराध्ययन सूत्र की प्रति में, जो इस समय बड़ौदा म्यूजियम में है, इस शैली का परिवर्तित रूप स्पष्ट लक्षित होता है. यहाँ सवाचश्म चेहरे के स्थान पर एक चश्म चेहरे दीखने लगते हैं—सीमांत रेखा को पार करती दूसरी आंख लुप्त हो गई, अलंकरण व नाटकीय संयोजन शिथिल पड़ गया, प्रकृतिचित्रण अधिक वास्तविक होने लगा, मुद्राओं की जकड़न ढीली हो गई, रंगों में बहुलता आ गई, संयोजन में विरलता के स्थान पर घनत्व छाने लगा, एक-सी कोणदार व वेगमयी रेखाएं गोलाकार हो भावानुगामी बन, जगह-जगह लोच खाती कहीं पीन तो कहीं स्थूल होने लगीं. शैली के इस नवनिर्माण को राजस्थानी चित्रकला का उद्भव मानना चाहिए. राजस्थानी चित्रकला के निर्माण में मुगलकला का कितना हाथ रहा है, यह विवाद का विषय हो सकता है, पर यह निश्चय है इसका यह रूप होने के पूर्व ही १५६५ से १५८० तक मुगलकला समुन्नत हो चुकी थी, फिर अकबर की सुलह पूर्ण नीति ने भी राजस्थान के अधिकांश भाग को सांस्कृतिक दृष्टि से एक कर दिया था. ऐसी हालत में राजस्थानी कला पर मुगलकला का प्रभाव न पड़ा हो यह समझ में नहीं आता.

मेवाड़ इस नवीन शैली का प्रमुख केन्द्र था. ११ वीं शती के अन्त तक इसका मौलिक रूप बन चुका था. १७ वीं शती

१. श्रद्धेय मुनि श्रीपुण्यविजय जी ने जेसलमेर के ज्ञान भंडारों से जैन कला के अनुपम नमूने खोजकर राजस्थानी व अजंता-एलोरा कला के बीच की कड़ी जोड़ दी है. लकड़ी की करीब चौदह सचित्र पटलियाँ आपने ढूंढ निकाली जिनमें कमल की वेल वाली पटली अत्यन्त विलक्षण है. इसका आलेखन श्री साराभाई नवाब की भरत व बाहुबली वाली पटली की दोहरो वेल का सा है—अलंकरण तो और भी अनोखा. इन वेलों में एक में जिराफ और दूसरे में गेंडे का अंकन किया गया है जो भारतीय कला में शायद पहले पहल यहीं हुआ हो. एक चित्र में मकर के मुख से निकलती कमल वेल बनाई गई है. ऐसी वेल सांची, अमरावती व मथुरा के अर्ध चित्रों की विशेषता है. अतएव जेसलमेर कला की प्राचीनता पर व परम्परागत कला के सान्निध्य पर ये चित्र गहरा प्रकाश डालते हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के विशद राजनैतिक वतावारण में भी मेवाड़ की चित्रकला उन्नतोन्मुख रही है. श्री गोपीकृष्ण कनौड़िया (कलकत्ता) के पास १६०५ शती का मेवाड़ कलम का बना रागमाला सेट है जो शायद चावुण्ड में चित्रित किया गया था. इसकी रेखाओं के कोणों व रंगों की चटकदार वर्णिका में जैन अथवा गुजराती शैली का क्षीण-सा प्रभाव झलकता है. १६०५ में मेवाड शैली में ग्रामीणता व स्थूलता दिखाई देती है. धीरे-धीरे-धीरे इसमें सुथरापन व परिपक्वता आने लगी पर साथ ही मुगल प्रभाव भी दीखने लगा. १७वीं शती के मध्य तक इस प्रभाव को मेवाड़ कलम ने आत्मसात कर अपने निजस्व को उभार लिया. उस समय स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित वैष्णव धर्म की भक्तिधारा समस्त उत्तरी भारत, गुजरात व राजस्थान को प्लावित कर रही थी. अतः मेवाड़ में भी भागवत् पुराण की कई सचित्र प्रतियां बनीं, साहबदी की बनाई १६४२ ईसवी की भागवत् पुराण की प्रति इस समय उदयपुर के सरस्वती भंडार में सुरक्षित है, इसकी एक प्रति सरस्वती भंडार कोटा में भी है. भागवत् के कई सचित्र पन्ने राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में हैं. १६५१ में चित्तौड़ में बनी रामायण की उक्त प्रति सरस्वती भंडार, उदयपुर में हैं व मनोहर द्वारा चित्रित एक प्रति 'प्रिंस ऑफ वेल्स श्यूजियम बम्बई' में है. राष्ट्रीय संग्रहालय की जेम पेलेस रागमाला व बीकानेर संग्रहालयकी रसिकप्रिया (१७वीं शति का मध्य) के चित्र मेवाड़ कलम के श्रेष्ठतम नमूने हैं. गीतगोविन्द पर भी चित्र बनाए गये. कंवर संग्राम सिंह, नवलगढ़ के पास गीतगोविंद के कई छिन्न चित्र प्राप्य हैं. लगभग १५६०-५१ के बने सूरसागर के कई चित्र भी गोपीकृष्ण कनौड़िया के संग्रह में हैं.

मेवाड़ी चित्रों के रंग शुद्ध व अत्यन्त चटकीले हैं. पृष्ठभूमि में रंगों का समतल प्रयोग किया गया है. स्त्रियां ठिंगनी पर सुंदर व आकर्षक बनाई गई हैं. प्रकृतिचित्रण में अलंकारण आ गया है. कहीं-कहीं बाद के चित्रों में मुगल प्रभाव के कारण हल्का-सा यथार्थ का पुट भी दिखाई देने लगता है. पहाड़ियों व चट्टानों के आलेखन में यह प्रभाव साफ पहचाना जा सकता है. घुमावदार रेखाओं की आवृत्ति से नदी के बहाव को दर्शाने का प्रयत्न किया है, दृश्या का प्रयोग रूढ़िमात्र रह गया है. विरोधी रंगों के बीच घटनामूलक पात्रों को इस तरह की रंग-बिरंगी वेषभूषा में चित्रित किया गया है कि आँखें अतिरिक्त उभार को देखकर टिकी-सी रह जाती हैं. पशु-पक्षी का चित्रण अक्सर जैन अथवा गुजराती शैली-सा हुआ है—घोड़ों व हाथी के चित्रण में मुगल शैली की यथार्थता के दर्शन होते हैं. रात का चित्रण स्याह पृष्ठभूमि पर चांद तारे बनाकर किया गया है. पुरुष वेषभूषा में घेरदार जामें पटका (कमरबंद) जहांगीर अथवा शाहजहांनुमा पगड़ियां व स्त्रियों में लहंगा, चोली, झीनी ओड़नी इत्यादि बनाए गए हैं.

मेवाड़ कलम के विषय नायक नायिका भेद, रागमाला, भागवत, पुराण व रामायण इत्यादि रहे हैं. राधाकृष्ण को लेकर श्रृंगारिक चित्रों की रचना की गई पर उनके आवरण में तत्कालीन समाज का सच्चा अक्स प्रतिबिम्बित हो पाया है.

१७वीं शती का अंत होते-होते मेवाड़ शैली का यह उज्ज्वल काल समाप्त हो गया. चित्रों की बाढ़ आ गई, परन्तु शैली में ढीलापन बढ़ने लगा. इस शैली का प्रचार इतना फैला कि छोटे-छोटे ठिकानेदार भी चित्रों के रसिक होगए. व्यक्तिचित्र दरबार शिकार व सवारियों के दृश्य जनानखाने व रंगरेलियों के दृश्य अब मेवाड़ कलम के विषय होने लगे. भक्त रत्नावली, पृथ्वीराज रासो, दुर्गामाहात्म्य व पंचतंत्र इत्यादि पर इस काल में सैकड़ों चित्र बने जिनमें कलात्मकता शनैः शनैः लुप्त होने लगी.

मेवाड़ के बाद कला-क्षेत्र में बूंदी का स्थान आता है। भारत कला भवन की दीपक राग व म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद की भैरव रागिनी इस कलम की सबसे प्राचीन प्राप्त रचनाएँ हैं. इनमें मेवाड़ की-सी ग्रामीणता व अल्हड़पन के साथ-साथ मुगली सुथरापन व कमनीयता भी दिखाई देती है. इनके रंग प्रभावोत्पादक तेज व चमकीले हैं. पेड़ पौधों व पशु-पक्षी के चित्रण में इतना सीधा व सच्चा निरीक्षण इन्हीं चित्रों में पहले-पहल मिलता है. चौड़ी आँखें, मोटी गढ़ेदार ठुड्डी, पतली नुकीली नाक, भारी चेहरा इत्यादि १७वीं शती के मेवाड़चित्रों की याद दिला जाते हैं.

शैली-विलक्षणता देखकर मालूम होता है कि भैरवी रागिनी का चित्रण-काल १६२५ ईसवी के लगभग रहा होगा. मेवाड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शैली से ही बूंदी कला की उत्पत्ति मानी जानी चाहिए, हालांकि मुगलशैली की नज़ाकत का भी इसमें कम प्रभाव नहीं पड़ा. पुरुषों की वेषभूषा में चमकदार (कोनेनुमा) जामें व अटपटी पगड़ियों के पहनावे से इनकी प्राचीनता आंकी जा सकती है. नेशनल म्यूज़ियम दिल्ली में बूंदी कलम के कई प्राचीन रेखा-चित्र प्राप्त हैं, जिनमें चेहरे के कोण मिटने लगे हैं. रचनाचातुर्य, कलम की कारीगरी, शैली की प्रौढ़ता, रंगोंका माधुर्य व आलेखन की सच्चाई देखकर भान होता है कि ये चित्र १६३० से १६६० के लगभग बने होंगे. कर्ल खंडेलवाल द्वारा प्रकाशित बूँदी कलम के चित्र काफी प्राचीन हैं.

इस तरह के चित्रों का समय १६६० से १६९० ईसवी तक था. स्त्री चेहरों की बनावट में इन बूंदी के आरम्भिक चित्रों में मेवाड़ शैली का अत्यधिक प्रभाव झलकता है, फिर भी गठन में यह काफी पुष्ट हैं. इनमें दृश्य चित्रण भी अधिक यथार्थ बन पड़ा है. यहां बूंदी की अपनी आकृतियों का निर्माण होते हम सर्व प्रथम देखते हैं. अब चेहरे छोटे व गोल हो गये हैं. गालों की गोलाई दिखाने के लिये आँख के नीचे व नाक के पास छाया का प्रयोग किया जाने लगा जो मेवाड़ कलम के चित्रों में कहीं नहीं दिखाई देता. मेवाड़ चित्रों में चेहरे चपटे बनते थे. जिन चेहरों में मेवाड़ी प्रभाव दिखाई देता है वे भी अत्यन्त कमनीय बनाए गये हैं. चेहरे का रंग लाल व किंचित् भूरापन लिये हुए हैं. रंग चटकीले होने पर मंदभुत व गम्भीर होने लगे हैं. पानी बल खाती रेखाओं की आवृत्ति द्वारा चित्रित किया गया है. पृष्ठभूमिका की हरीतिमा को लाल-पीले फूलों से आच्छादित दिखाया गया है. इमारतों का चित्रण भी बड़ी दक्षता से उसमें जड़ी हुई एक-एक ईंट बनाकर किया गया है.

१८वीं शती के मध्य के बने बूंदी शैली के चित्र अत्यन्त मधुर व श्रेष्ठ हैं. श्री कनौड़िया के संग्रह में इस शती के बने राग रागनियों के ३६ चित्रों को देखकर इनके सौंदर्य का भान किया जा सकता है. १८वीं शती के अन्त में यह सुथरापन व निरूपण का माधुर्य क्षीण होने लगा. लाल रंग की जगह चमकदार पीला रंग अब चेहरों में भरा जाने लगा. गोलाई के लिए अत्यधिक परदाज का प्रयोग कुछ-कुछ कर्कशता पैदा करने लगा. पानी दर्शाने वाली सफेद रेखाएँ भी घनी व मोटी होने लगी. मुँह के समीप छाया दिखाकर पृष्ठभूमि से आकृति को उभारने का बेतुका प्रयत्न किया जाने लगा. पेड़ पौधों को घने फूल पत्तों व लताओं से आच्छादित किया जाने लगा. नारियों के वस्त्रों में जगह-जगह सोने की 'तबक' की छिड़कन ने चकाचौंध पैदा कर कौतूहल बढ़ा दिया, परन्तु भावाभिव्यक्ति जाती रही और ऐसा लगा कि शैली में यह मुगलिया शान शौकत की मिलावट धीरे-धीरे इसे अवनतोन्मुख करने लगी. रंगों की गहराई में भी परिवर्तन हो गया. शांति व कोमल रंगों का प्रयोग होने लगा—मीनाकारी व नक्काशी बढ़ गई. पेड़ अधिक स्वाभाविक बनने लगे परन्तु अब फूल पत्तों व लताओं का रंग-बिरंगा परिधान लुप्त होने लगा. पेड़ व पत्तों में छाया व प्रकाश अधिक दर्शाया जाने लगा. पानी के लिये चांदी का रंग प्रयुक्त होने लगा. जगह-जगह मॉडलिंग में[गढ़न] मुगल प्रभाव झलकने लगा. रात्रि के चित्रण में यह प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया. १८वीं शती के अन्त के चित्रों में रंगों की कर्कशता व अलंकरण की बहुतायत ने चित्रोपम सौंदर्य खो दिया. कहीं-कहीं चित्र अपूर्ण ही छोड़ दिये गये गये हैं. इनमें नारियों के चेहरे भारी व बेड़ौल बनाए गए हैं. आँखें घुमावदार व लम्बी, ठुड्डी भारी और ललाट चन्दन से पुता हुआ. शायद बूंदी का दक्षिण से भी राजनैतिक व सांस्कृतिक संबंध रहा होगा. इसी कारण दक्षिणी शैली का भी प्रभाव बूंदी कलम में दिखाई देता है. बूंदी के चित्रों में १८वीं शती में रंग चपटे, प्राणहीन व बदरंग हो गये और धीरे-धीरे शैली का स्वाभाविक सौंदर्य जाता रहा.

राजस्थानी चित्रकला में किशनगढ़ कलम की देन बेजोड़ है. राजा मानसिंह [१६५८-१७०६] के समय से ही किशनगढ़ में श्रेष्ठ कलाकार पाए जाते हैं. मानसिंह की युवावस्था की एक ओजपूर्ण तस्वीर नेशनल म्यूज़ियम दिल्ली में है. जिस में वह घोड़े पर सवार हैं व भैंसे का शिकार कर रहे हैं. यह चित्र १६९४ शती का है. इसमें औरंगजेब कालीन मुगल कला का प्रभाव झलकता है. मानवाकृति में सुफियानापन किशनगढ़ कलम में यहीं से शुरू हो गया था. १८वीं शती के राजा शेषमल के शबीह चित्र में यह और भी गहरा हो गया. राजा के इर्द-गिर्द तहजीब व कायदे कानून से खड़े हाकिम हुक्काम, पृष्ठभूमि में दृष्टिक्रमानुसार अंकित झील व किला, प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण ' इन सबमें औरंगजेब व फर्रुखसियर काल की कला का काफी प्रभाव दिखाई देता है. भवानीदास इस समय का प्रसिद्ध चित्रकार था. राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषमल का सुंदर चित्र इसी कलाकार की रचना है.

सावंतसिंह [कवि नागरीदास] ने काव्यरचना १७२३ शती से ही आरम्भ कर दी थी. उसकी राधासौंदर्य की पराकाष्ठा थी. उसका रूप अलौकिक था फिर भी अत्यन्त लौकिक. किशनगढ़ कलम के चितेरों के लिये यह रूप आदर्श बन गया और इसी समय से यहां की कला में एक क्रान्ति-सी उत्पन्न हो गई. १७३५ से १७५७ शती तक किशनगढ़ कला का स्वर्णयुग था जब कि निहालचन्द व उससे प्रभावित कलाकार कवि नागरीदास के काव्य को साकार कर रहे थे. राजसिंह की कलाभिरुचि अन्य राजाओं जैसी ही थी—शबीह लगवाना, दरबार सवारी अथवा शिकार के दृश्य बनवाना इत्यादि. इसमें भी सन्देह नहीं कि राधाकृष्ण की लीलाओं के चित्र राजस्थान में उस समय तक बनने लगे थे, किन्तु जो भावात्मकता, कल्पना की सूक्ष्मता, लाक्षणिकता, मादकता, मनोवैज्ञानिक निरीक्षण, दृष्टि का पैनापन, व मानवरूप की पराकाष्ठा सांवतसिंह के समय में आई उसने सारे राजस्थान की कला में ही जागृति की लहर दौड़ा दी. उससे १८वीं शती में वह चित्र बने जो विश्व कला की निधि बन गए. कवि नागरीदास की राधा, निहालचन्द द्वारा चित्रित बणी-ठणी संसार प्रसिद्ध [चित्रकार लिनार्डो डीविंची] मोना लिसो के समक्ष आदरपूर्वक रखी जा सकती है.

१७वीं शती में चित्रकला के कई केन्द्र हो गये. मेवाड़, बूंदी. अजमेर बीकानेर इत्यादि अनेक स्थानों में श्रेष्ठ चित्र बनने लगे. आमेर व जोधपुर में भी इस समय चित्रों का इतिहास मिलता है परन्तु वह बहुत ही उथला है. यहां के चित्र काफी आरम्भिक इस समय दीख पड़ते हैं. १७वीं शती के अन्त में बीकानेर में मुगल शैली से अत्यन्त प्रभावित एक स्थानीय शैली पनपती रही. इस पर दक्षिणी शैली का भी प्रभाव पड़ा. यहां की लम्बी आकृतियों व विशेष प्रकार के पेड़ पौधों व फूल पत्ती इत्यादि के चित्रण से यह बात स्पष्ट हो जाती है.

१८वीं शती में चित्रों की बाढ़-सी आ गई. एक-एक राज्य यहां तक कि छोटे से छोटे ठिकाने में भी चित्र शालाएँ खुलने देगी. हजारों की संख्या में चित्र बनने लगे. जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर इत्यादि इसके मुख्य केन्द्र बन गए. जयपुर के रासमंडल के चित्र जो पोथीखाने में संग्रहित हैं, अत्यन्त गतिपूर्ण हैं. उष्ण रंगों व ओज की अब चित्रों में कमी दीखने लगी. ढेरों चित्र बने जिनमें से अच्छे चित्र उंगलियों पर गिने जा सकते हैं. १९वीं शती में चित्रों की बाढ़ें उन्माद सी बढ़ गई. १८५० शती के बाद के चित्रों में कलात्मकता के स्थान पर केवल कारीगरी दिखाई देने लगी व धीरे-धीरे इसमें भी शिथिलता आने लगी. उनकी कीमत अब बाजार के मोल तोल सी ही रह गई.

१९वीं शती के उत्तरार्ध व २०वीं शती के आरम्भ में प्राचीन चित्रों की अनुकृति करने वाले घटिया किस्म के यूरोपीय चित्रों व फोटोग्राफी से प्रेरित चितेरे यत्र तत्र बाजारों में बैठे दिखाई देने लगे. तभी बंगाल में श्री अवनीन्द्रनाथ टैगोर ने कला का पुनर्निर्माण कर समस्त भारत में जागृति की एक नई लहर दौड़ा दी. राजस्थान ने भी उसमें अपना योगदान दिया. श्री शैलेन्द्रनाथ डे की प्रेरणा से की रामगोपाल विजयवर्गीय ने राजस्थान की मृतप्राय कला में फिर से चेतना पैदा की. इस समय राजस्थान में चित्रकला के तीन रूप प्रचलित हैं. एक वह जिसके प्रवर्तक परम्परागत कला के पुनर्निर्माण में संलग्न हैं. रामगोपाल विजयवर्गीय, गोवर्धन जोशी, रामनिवास वर्मा, देवकीनन्दन शर्मा आदि इस शैली के उल्लेखनीय कलाकार हैं. दूसरे यथार्थ शैली में परीक्षण करने वाले कलाकार हैं. श्रीभूरसिंह शेखावत व श्री भवानीचरण गुई इस श्रेणी के स्मरणीय कलाकार हैं. कला का तीसरा रूप वह है जिसमें आधुनिक कला की विभिन्न प्रवृत्तियों पर प्रयोगात्मक चित्र बनाने वाले कलाकार आते हैं. इन पंक्तियों का लेखक, श्री आर. वी. सखालकार, रणजीत सिंह व ज्योतिर्मान स्वरूप इत्यादि इसके गिने माने कलाकार हैं.

पुनर्जागरण का अभी राजस्थान में शैशवकाल ही है. १८वीं व १९वीं शती की राजस्थानी कला ने विश्वकला में जो स्थान पाया उस पर आसीन होने के लिये राजस्थान को अभी कल की प्रतीक्षा है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org